ज्ञानविविधा
रचना, आलोचना और शोध की त्रैमासिक पत्रिका

Online ISSN : 3048-4537
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-1 (Jan.March) 2025
Page No.- 19-23
©2025 Gyanvividha
www.journal.gyanvividha.com

डॉ. दीपक कुमार मिश्र
विद्यालय अध्यापक
बेगूसराय, बिहार – 851128.

Corresponding Author :
डॉ. दीपक कुमार मिश्र
विद्यालय अध्यापक
बेगूसराय, बिहार – 851128.

भारतीय सिनेमा, साहित्य एवं संस्कृति और आधुनिक स्त्री

भारतीय सिनेमा समाज को बदलते रहने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन करता है। वह अपनी सरोकारिता से कभी पीछे नहीं हटा है। जनता में शिक्षण-व्यवस्था को आगे बढ़ाने में सिनेमा एक माध्यम का काम करती है। इसके माध्यम से सिर्फ मनोरंजन ही नहीं वरन मार्गदर्शन का भी कार्य प्रशस्त करता है। इस प्रकार से सिनेमा कभी कहानी का कार्य करती है तो सीरियल एक लंबा उपन्यास, महाकाव्य आदि के गुण से सुसज्जित रहता है। सिनेमा का साहित्य के साथ अंतरसंबंध पाया जाता है। जिस प्रकार साहित्यिक के गद्य विधाओं के अंतर्गत नायक, नायिका और खलनायक और कहानी के सोपान होते हैं ठीक उसी प्रकार सिनेमा में भी महत्वपूर्ण नायक, नायिका और खलनायक के साथ-साथ कहानी का प्रारम्भ, मध्य और अंत घोषित किया जाता है। साहित्य के भांति सिनेमा में भी रस, छंद, अलंकार, भाषा-शैली, रंग-सज्जा, परिधान, उद्येश्य आदि प्रमुख बिन्दुओं को देखते हुये कार्य सम्पन्न किया जाता है या इन सभी बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव 'भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा' के संपादकीय में लिखते हैं- "साहित्य की विधाओं की भांति सिनेमा को भी कई भागों में बांटा जा सकता है- आर्ट फिल्में, कामर्शियल फिल्में, वार एंड पीस फिल्में आदि। किसी भी फिल्म स्टोरी अथवा सीरियल में साहित्य के छः प्रमुख तत्वों के अतिरिक्त अन्य तत्व भी पाये जाते हैं, जिन्हें फिल्म निर्माता का ग्रूप 'टीम वर्क' को ध्यान में रखकर पूरा करता है।"[1] समाज के लिए सिनेमा अभिव्यक्ति का माध्यम है जो तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक घट रही घटनाओं को और भी विश्वसनीय बनाकर पाठक, श्रोता और देखने वाले समूह के समक्ष प्रस्तुत

करती है जिससे समाज पर सीधा-सीधा असर करती है। जैसे- "सिनेमा अभिव्यक्ति का सर्वाधिक प्रभावशाली एवं सशक्त माध्यम है जो किसी घटना एवं विचार को मनोरम ढंग से प्रस्तुत करता है। व्यक्ति के अन्तःकरण को संस्पर्शित कर उसे सकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर करता है। सिनेमा मात्र मनोरंजन का साधन नहीं है अपितु अतीत का अभिलेख, वर्तमान का चितेरा और भविष्य की कल्पना है। सामाजिक परिवर्त्तन, लोक जागरण तथा बौद्धिक क्रान्ति की दिशा में भारतीय सिनेमा अविस्मरणीय है।"[2] भारतीय सिनामा और साहित्य का अपना-अपना विस्तृत इतिहास रहा है। भारतीय सिनेमा का इतिहास सन 1904 ई० से माना जाता है जब मणि सेठना ने भारत का पहला सिनेमाघर बनाया था, जिसमें पहली प्रदर्शित होने वाली फिल्म 'द लाइफ ऑफ क्राइस्ट' थी। इस सिनेमा के प्रदर्शन के बाद फिल्म जगत के पितामह कहे जाने वाले दादा साहब फाल्के इतने ज्यादा प्रभावित हुये कि उन्होंने सिनेमा की नींव रखने की सोच को विकसित करने लगे। बहुत सारे प्रयोग किए गए मगर असफलता हाथ लगती रही। सन 1909 ई० में 'कोरोनेशन थियेटर' में 'पुंडलीक' सिनेमा बनाई गई जिसका निर्देशन कार्य 'दादा साहब तोर्ने' ने सँभाला था। भारतीय मुक सिनेमा 1913 ई. में दादा साहब फाल्के के निर्देशन में सम्पन्न किया गया। तत्कालीन समाज में पौराणिक कथाओं को ध्यान में रख कर महत्वपूर्ण सिनेमा बनाई गई हैं जिनमें- भस्मासुर मोहिनी, सत्यवान सावित्री, लंकादहन आदि प्रमुख है। सिनेमा के आरंभिक योगदान के कारण ही दादा साहब फाल्के को सिनेमा का पितामह कहा जाता है। भारतीय सिनेमा में महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुये दादा साहब फाल्के के संदर्भ में कहा जा सकता है- "फिल्मों की प्रगति के साथ 1948 में 'भारतीय फिल्म डिवीजन' और सन् 1952 में सेंसर बोर्ड का गठन किया गया और 1953 में फिल्मों को पुरस्कृत करने की परमपरा की शुरुआत हुई। इस तरह दादा फाल्के के अथक प्रायसों से भारतीय सिनेमा का जन्म एवं विविध क्षेत्रों में प्रगति के रास्ते खुले फिल्म डिविजन के निर्माण से फिल्मों के फ़लक का विस्तार हुआ।"[3] साहित्य पर जिस प्रकार पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव पड़ता है और साहित्य का क्षेत्र विस्तार होता है ठीक उसी प्रकार भारतीय सिनेमा पर भी रुसी और चीनी निर्देशकों का पूर्ण प्रभाव देखने को मिलता है। सभी फ़िल्मकार आन्द्रेर्द तार्कोन्स्की द्वारा बनाई गई जनवादी फिल्में को देखा और तत्कालीन परिवेश जो कि दूसरे विश्व-युद्ध का था उसमें ऐसी फिल्में आती है जो आम जन को झकझोरती और मानवता का पाठ पढ़ाती है जिससे सभी वर्ग प्रभावित होते हैं। दूसरा विश्व-युद्ध ने सौन्दर्य का प्रतीक ही बादल दिया, सभी मनुष्य धारासाही हो गए। वैश्विक पटल पर जहां विश्वयुद्ध चल रहा था तो भारतीय अंग्रेजों से स्वतंत्र होने के लिए छटपटा रहे थे, जिसका प्रभाव सिनेमा जगत पर भी दिखाई देता है। अब तक भारतीय सिनेमा में मूक फिल्मों की जगह पर सवाक फिल्में आ चुकी थीं। आदर्शवादी सिनेमा की जगह पर यथार्थवादी, जनवादी और जीवन के संघर्षों को व्यक्त करने वाली सिनेमा भारतीय जनता के हृदय में जगह बनाने लगी थी। साहित्य में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का समय था। जहां एक ओर प्रेमचंद, सुमित्रा नन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि प्रमुख थे तो दूसरे ओर सच्चिदानंद वात्सायन अज्ञेय, माखन लाल चतुर्वेदी, अमृतलाल नागर, मोहन राकेश, उषा प्रियंवद, आदि जैसे महान साहित्यिक हस्ताक्षर साहित्य निर्माण करने और साहित्यिक प्रयोग करने में लगे हुये थे। साहित्य में फ्रायड और सार्त्र, यूंग आदि का सभी क्षेत्र में प्रभाव देखने को मिलता है। समकालीन समय में उत्कृष्ट सिनेमा बनाई जा रही थी, जिनमें व्ही शांताराम- दुनिया न माने, डॉ आँखें बारह हाथ; गुरुदत्त- प्यासा; पी.सी. बरुआ- देवदास; देवकी बॉस- विद्यापति; फ्राज आस्टेन- अछूत कन्या; महबूब- औरत; आदर्श ईरानी- किसान कन्या; सोहराब मोदी- पुकार; विजय भट्ट- भर्ता मिलाप, राम

राज्य; विमल राय- दो बीघा जमीन; सत्यजित रे- पाथेर पांचाली; के.ए. अब्बास- राही; राजकपुर- जागते रहो, आवारा; आदि कई प्रमुख एवं महत्वपूर्ण सिनेमा है जो समकालीन समय को प्रभावित तो किया ही था बल्कि आज के परिवेश में भी जनता के मनोरंजन के साथ-साथ उद्वेलित करने का काम करता है। साठ के दशक में बनी सिनेमा ज्वलंत मुद्दों को उठाते हुये साहित्य एवं संस्कृति के उत्कृष्टता को उजागर करती है। जिनमें मुगले आजम, संगम, शोले, आरजू, साहब-बीबी और गुलाम, आदि सिनेमा हैं जो अपनी महत्वपूर्ण भूमिका से भारतीय सिनेमा को एक प्रमुख आधार प्रदान करने में अहम भूमिका निभाती है। सिनेमा पर अंकुश लगाने के संदर्भ में मृत्युंजय लिखते हैं- "किसी भी समाज में बौद्धिक एवं सांस्कृतिक अंकुश रखने का काम लेखक और विचारक कराते हैं, कोई सरकारी एजेंसी नहीं। हिन्दी सिनेमा पर जितना लेखकीय और पत्रकारिता अंकुश होना चाहिए था, उसका एक प्रतिशत भी नहीं रखा गया। पत्रकारिता जैसा गंभीर माध्यम आजादी के बाद सिनेमा का इस्तेमाल अपने लिए वैसे ही करने लगा, जैसे इन दिनों दूरदर्शन कर रहा है।"[4]

'संस्कृति' मानव सभ्यता का उन्नायक माना जाता है। संस्कृति भारतीयता का मूल स्तंभ है। किसी भी देश की पहचान वहाँ की संस्कृति से ही पता चल जाती है। संस्कृति व्यक्ति को ऊर्जावान और स्वतंत्र देखने की एक प्रक्रिया मानी जाती है। संस्कृति किसी भी समाज की इतिहास होती है, जो दर्पण में उठ रहे प्रतिबिंब की तरह स्पष्ट रहती है। जैसे कि 'हिन्दी सिनेमा का सांस्कृतिक विश्लेषण' नामक आलेख में डॉ. मीरा रानी रावत लिखती हैं- "संस्कृति किसी भी समाज व उसके इतिहास का दर्पण होती है। धार्मिकता उसके प्राण हैं। आध्यात्मिकता उसके नेत्र हैं, नैतिकता उसकी पूजा है, दार्शनिकता, चिंतन धारा उसकी काया है तथा परिवर्त्तनशीलता सहज गुण है।"[5] यानि कि किसी भी व्यक्ति, समाज, जाति, समुदाय एवं राष्ट्र आदि के संस्कारों को एकत्रित होने के बाद उस समाज, जाति एवं राष्ट्र की संस्कृति का पता चलता है, जो कि परिवर्त्तनशील होती है। भारतीय संस्कृति के संदर्भ में रामधारी सिंह दिनकर मानते हैं कि- "भारतीय संस्कृति अर्थात दैवी संस्कृति वह संजीवनी रसायन है, जिसमें अनेकानेक संस्कृति एवं सभ्यताओं का परिपाक है जो विविध संपन्नता होने के बाद भी इतना प्रभावी है कि युगों-युगों तक जीवित रहेगा और समस्त विश्व-बसुधा को नव-जीवन देता रहेगा। इसने यूनान, मिश्र, द्रविड, हूण, शक जैसी संस्कृति को खरल में मिलाकर कूटा है, इसके बाद उसमें दैवी रसायन जैसी बहुमूल्य तत्व बना है।"[6] आज का समय 21वीं सदी का है जहाँ मानव ने प्रत्येक क्षेत्र में कल्पना की अतिवता के कारण अत्यधिक सफलता हांसील कर पाए हैं। प्राचीन काल से ही विभिन्न विचारों एवं मान्यताओं ने अपने-अपने ढंग से संघर्ष किया और दूसरी सभ्यता और संस्कृति को अपनाया भी और दूसरों में खुद को समाहित भी किया है। भारत में सभी धर्मों में आदर्शवादी स्तम्भ को अपनाया है। क्योंकि यहाँ सबसे अधिक भाषाएँ, धर्म, कला, विचार, दर्शन आदि का निरंतर प्रवाह देखा गया है। जिनका एक स्वतंत्र इतिहास धारा-प्रवाह प्रवाहित होता रहा है।

सभ्यता के साथ ही मनोरंजन का अन्वेषण किया गया था, जो समय-समय पर परिवर्तित होते हुये सभ्यता के विकास के साथ निरंतर प्रवाहित होता दिखाई पड़ता है। जीवन को आनंदमयी और सौंदर्यपूर्ण बनाने के लिए कला का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। सिनेमा के माध्यम से संस्कृति का प्रदर्शन होता है और वह मानव हृदय को प्रभावित कर संस्कृतियों के आदान-प्रदान में सफल होता है। जैसे- "सिनेमा समाज का दर्पण होता है। मानव मन को सुख, दुख, क्रोध, करुणा, भय, विभ्रम, विलास आदि का मार्मिक अनुभूति होती है तो सहसा ही वह इन अनुभूतियों से प्रेरित होकर मनोभावों को प्रकट करता है। वह जब भाव संपृक्त हो मस्त होकर झूमने लगता है तो उसी दशा में उसके बहिर्निर्गत छलकते हुये भाव सहसा प्रदर्शित हो जाते हैं उन्हीं प्रकटित भावों का

स्वरुप सिनेमा में देखने को मिलता है, जिससे दर्शक भी रोमांचित हो जाते हैं। इस रूप में हम पाते हैं कि सिनेमा के माध्यम से भारतीय संस्कृति का अनवरत प्रवाह संभव है।"[7] भारतीय संस्कृति में मानव मंगल की कामना की जाति है। एकता में अनेकता और अनेकता में एकता की बात करके मंगल भाव को सर्वत्र स्थापित करने की बात की जाति है। इसके तत्व माने जाते हैं- सत्यं शिवम सुन्दरम्। बाजारवादी और उपभोक्तावादी युग में मानव का स्वतंत्र जीवन यंत्रवत संचालित होता जा रहा है जहाँ उसके शब्दकोश से असंभव शब्द मिटते जा रहे हैं। सिनेमा के माध्यम से भारतीय संस्कृति की गरीमा का विराट रूप समाज के सामने उजागर किया जा सकता है। धार्मिक सिनेमा और सीरियल के माध्यम से संस्कृति, सभ्यता और आध्यात्मिक आस्था के भाव को वर्णित किया जाता है। जैसे- महाभारत, रामायण, कृष्णा, जय संतोषी माँ, जय हनुमान, वैष्णो माता, माता की चौकी, ॐ नमः शिवाय, आदि कई प्रमुख सिनेमा और सीरियल हैं जिसमें देवी-देवताओं को लक्ष्य करके व्यक्ति के साथ जुड़ी आस्था को चित्रित किया गया है। सिनेमा के माध्यम से संस्कृति को पहचानने की बात करते हुये डॉ. कुमार भास्कर लिखते हैं- "भूमंडलीकरण और बाजारवाद के दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति के बढ़ते मकड़जाल में आज भी अपने अतीत के माध्यम से समाज और देश को राष्ट्रीय संदर्भों में पहचानने की कोशिश सिनेमा के माध्यम से है।"[8]

संस्कृति और समाज एक दूसरे से जुड़े हुये हैं। समाज में तीज-त्योहार, व्रत-उपवास आदि को मनाकर सीधे रूप से संस्कार के साथ ही जोड़ा जाता है और इस संस्कार का निर्वाहन करने का श्रेय स्त्रियों पर ही थोपा जाता है। सिनेमा के माध्यम से भारतीय संस्कृति को उजागर करने का प्रयास किया जात रहा है। 90 के दशक के सिनेमा में एक आदर्श परिवार, समाज और संस्कृति का निर्वाह बखूबी दिखाई पड़ती है। जैसे- हम आपके है कौन?, विवाह, आदि सिनेमा में नायिका परिवार के अनुकूल कार्य करती है और समाज के लिए एक आदर्श स्थापित करती है। वहीं 21वीं सदी के सिनेमा में सबकुछ बादल जात है। सिनेमा की नायिका परिवार से लड़ कर आर्थिक रूप से मजबूत होना चाहती है और कारपरेट जगत में एक स्वतंत्र पहचान बनाना चाहती है, जिसका उदाहरण 'कारपरेट' सिनेमा की नायिका बिपाशा बासु स्वावलंबी हो जीवन यापन करना चाहती है। वहीं 'फैशन' सिनेमा की नायिका प्रियंका चोपड़ा और कंगना राणावत मडलिंग की दुनियाँ में एक अलग पहचान बना कर भारतीय स्त्रियों के लिए एक मिशाल कायम करती हैं। 'मिमी' सिनेमा की नायिका कृति सेनन समाज में अपने कोख को पैसे पर किराया लगाने की सामाजिक मुद्दे को सिनेमा के माध्यम से उजागर करती है। अभी हाल फिलहाल में आई 'डार्लिंग' सिनेमा पति द्वारा प्रताड़ित स्त्री की प्रतिक्रिया को आलिया भट्ट नायिका ने बखूबी निभाया है। यानि कि बिपाशा, प्रियंका, कंगना, विद्या बालन, कृति आदि कई ऐसी स्त्री नायिका हैं जो सामाजिक ज्वलंत मुद्दे को दर्शकों के सामने प्रस्तुत करने में नहीं हिचकिचाती हैं। सिनेमा, साहित्य और संस्कृति के साथ-साथ स्त्री के आधुनिक विचारों को अभिव्यक्त करने में सफल और सिद्ध होता प्रतीत हो रहा है।

अंततः कहा जा सकता है कि भारतीय सिनेमा समकालीन परिस्थितियों को उजागर करने में सफल और सिद्ध होता है। सिनेमा और साहित्य दोनों में तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं को उजागर करने की भरपूर क्षमता होती है, जो समय-समय पर निर्देशक और लेखक दोनों प्रस्तुत करते रहते हैं। सिनेमा के माध्यम से आधुनिक स्त्रियों में भी मुखर होने की क्षमता बढ़ती जा रही है। आज के युग में स्त्रियाँ पुरुष से अलग स्वतंत्र सत्ता बनाने का निर्णय कर रही हैं और घर एवं परिवार के साथ पुरुष की अपेक्षा अच्छे से देखभाल करने को तत्पर हो रही है। स्त्रियाँ आर्थिक रूप से मजबूत हो कर परिवार का भरण-पोषण करने में भी सफल दिखाई देती हैं। आज पुरुष के बराबर ही नहीं बल्कि उसने एक कदम आगे बढ़ाने की ओर मुखरित हो गई हैं। सिनेमा में जहाँ

पुरुष को ज्यादा महत्व दिया जाता था अब स्त्री नायिका अपने बल पर पूर्ण सिनेमा करती हैं और सफल सिद्ध होती हैं। जैसे कि 21वीं सदी के कई महत्वपूर्ण सिनेमा है जिनमें सिर्फ नायिका के बल पर पूर्ण हुआ और सफल हुआ है।

संदर्भ सूचीः-

1. सिंह, डॉ. देवेन्द्रनाथ, यादव, डॉ. वीरेंद्र सिंह, भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा एक मूल्यांकन, संपादकीय से
2. वही, पृष्ठ संख्या- 08.
3. सिंह, डॉ. देवेन्द्रनाथ, यादव, डॉ. वीरेंद्र सिंह, भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा एक मूल्यांकन, पृष्ठ संख्या- 12.
4. मृत्युंजय (संपादक), हिन्दी सिनेमा का सच, पृष्ठ संख्या- 10
5. सिंह, डॉ. देवेन्द्रनाथ, यादव, डॉ. वीरेंद्र सिंह, भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा एक मूल्यांकन, पृष्ठ संख्या- 89
6. गुप्ता, डॉ. रुचि, भारतीय संस्कृति : शाश्वत जीवन दृष्टि एवं संगीत, पृष्ठ संख्या- 6
7. सिंह, डॉ. देवेन्द्रनाथ, यादव, डॉ. वीरेंद्र सिंह, भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा एक मूल्यांकन, पृष्ठ संख्या- 92
8. भास्कर, डॉ. कुमार, राष्ट्रियता और हिन्दी सिनेमा, भूमिका से

सहायक ग्रंथः-

1. प्रसाद, प्रो. कमला (संपादक), फिल्म का सौंदर्यशास्त्र और भारतीय सिनेमा, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2010
2. भारद्वाज, विनोद, सिनेमा कल, आज, कल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2006
3. भास्कर, डॉ. कुमार, राष्ट्रियता और हिन्दी सिनेमा, संजय प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2015
4. मृत्युंजय (संपादक), हिन्दी सिनेमा का सच, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 1997
5. सिंह, डॉ. देवेन्द्रनाथ, यादव, डॉ. वीरेंद्र सिंह, भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा एक मूल्यांकन, पैसिफिक पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण- 2012

•